खयाल और ठुमरी का परस्परसंबंध

सत्यशील देशपांडे

खयाल और ठुमरी के परस्परसंबंध पर कटाक्ष करने से पहले, मेरी समझ में इन दोनों विधाओं के इतिहास पर तथा संगीत के उगमस्थान से लेकर उसके वर्तमान प्रस्तुतीकरण तक की उत्क्रांती पर भी गौर करना उचित होगा और अनिवार्य भी।

हमारे देश में वेदिक ऋचाओं को संगीत का उगमस्थान माना गया है। पंचमहाभूतों का कोप न होकर उनका कृपाछत्र मानवी जीवन की सुख शांती बनाए रखे इसीलिये पंचमहाभूतों को सामुहिक ऋचागायन से आवाहित किया जाता था। मानवमात्र ने किया हुआ यह गायन पंचमहाभूतों की अनाकलनीय शक्तियों को किया गया **सामूहिक** वंदन था। यह सामूहिक गायन था।

आगे जाकर संगीत की प्रवाहधारा ने उत्क्रांतिवश, गंधर्वगान, गीति, जातिगायन, प्रबंध, धृपद आदि आकारबंधों से गुज़रते हुए, कायाकल्पित होते हुए खयालगायन की विस्तीर्णता और गहराई में अपने आप को रूपांतरित पाया है। दुर्भाग्यवश इसके समांतर जो लोकधुने, त्योहारों के गीत, शादी-ब्याह के गीत आदि सुगम संगीत की परंपराएं चली आा रहीं हैं, उनका इतना लंबा इतिहास उपलब्ध नहीं है। पर इस समांतर सुगम संगीत के प्रवाह का अस्तित्व भी मान्य करना ही पडेगा। संगीत की उत्क्रांती का आलेख, पंचमहाभूतों को वंदन करने के लिये उपयोग में लाए गए ऋचागायन से, जिसे वंदन करें ऐसे खयाल जैसे सर्वसमावेशी आकारबंध तक का है।

संक्षिप्त में कहें तो वेदिक ऋचाओं से खयाल तक की संगीत की यात्रा समूहगान से लेकर मानव की निजी संवेदनाओं की एकल प्रस्तुती तक की है।

कला का शास्त्र तो अपनी जगह सुस्थित है ही। लेकिन शास्त्र की कलात्मक प्रस्तुतीकरण के लिये भारत के दो-तिहाई हिस्से में फैली निजी मानवी संवेदनाओं की अभिव्यक्ति ने, गायकों के विभिन्न मिजाज़ों ने खयाल के कलापक्ष और भावपक्ष को बहुत वैविध्यपूर्ण और संपन्न बनाया है। यह संभव इसीलिये हुआ है कि राग-ताल के दायरे में रहते हुए यह संगीत पूर्वनिश्चित नहीं है। यह ऐसा इसीलिये है कि इस उत्तर हिंदुस्तानी ताल के आवर्तन के दो हिस्से होने से (खाली-भरी) इस संगीत में मुखडा लेकर सम पे आया जाता है और आवर्तन की शेष जगह में कलाकार के सुसंस्कारित प्रतिभा का कुरंग अपनी मृगतृष्णा का गठन करता रहता है। अपने तरीके से आवर्तन बांधता रहता है। संगीत द्वारा निजी संवेदनाओं की अभिव्यक्ति का मतलब ही है कलाकार द्वारा अपने स्वतंत्र सौंदर्यशास्त्र की खोज, उसके मूल्यों का गठन और उसकी अभिव्यक्ति तथा प्रस्तुती। यह प्रक्रिया कलाकार के अपने आत्मशोध की ही होती है।

मोटे तौर पर खयाल संरचनात्मक सौंदर्य (structural beauty) का, और जैसे ऊपर विषद कर चुका हूँ, आवर्तन बांधने की विपुल और सशक्त शक्यताओं का प्रतीक माना गया है। तब ठुमरी प्रतीक मानी गई है सुकुमार, कोमल, सुरों और भावनाओं की अभिव्यक्ति की। फिर भी ठुमरी में उपज के लिये एक

संरचनात्मक ढांचा आवश्यक होता ही है। अच्छे ठुमरी गायकों के गायन में वह पाया भी जाता है। ठुमरी में आवर्तन बांधना केवल दीपचंदी या अद्धे तीनताल में संभव होता है, क्योंकि इन तालों में आवर्तन छोटे ही सही पर खाली-भरी युक्त होते हैं। वैसे वे चैती, कजरी, होरी, दादरे में नहीं होते। अपने संपूर्ण सुकुमार, कोमल भावनाओं के साथ, बोल-बनाव के साथ गाई जाने वाली, दीपचंदी या अद्धे तीनताल में गाई जाने वाली ठुमरी ही को मैं आदर्श ठुमरी का प्रतीक मानता हूँ। इस बात को और स्पष्ट करना चाहूँगा। श्रीमती शोभा गुर्टू द्वारा लोकप्रिय की हुई रचना 'रंगी सारी, गुलाबी चुनरिया' ठुमरी नहीं है, लेकिन उनहीं के द्वारा गाई हुई 'राधा नंद कुंवर समुझाय'दीपचंदी में गाए जाने वाले ठुमरी के सौंदर्यमूल्यों का उत्तम परिपोश करती है। सलामत-नज़ाकत जी द्वारा गाई गई 'साजन मोड मुहारा'या 'सैंया बिना घर सूना', या बडे गुलाम अली खांसाहब द्वारा गाए हुए 'याद पिया की आए'या 'आए ना बालम'मेरी समझ में अतिसुंदरता से प्रस्तुत किये हुए गीत हैं। इनमें बोल-बनाव के लिये गुंजाईश कम है। चैती, होरी, कजरी जैसे दादर और कहरवा तालों में गाए जाने वाली प्रस्तुतियों में दीपचंदी की तुलना में बोल-बनाव की गुंजाइश कम होते हुए भी इसमें बहुत सुंदर बोल-बनाव सिद्धेश्वरी देवी और शोभा गुर्टू जी ने किया है। मशहूर किस्सा है - जब बडे गुलाम अली खांसाहब का गायन बनारस में सिद्धेश्वरी देवीजी के घर था, तब उन्होंने गोद में लिया हुआ स्वरमंडल ज़मीन पर रखकर सिद्धेश्वरी जी को कहा 'मैं दुनिया को ठुमरी सुना सकता हूँ लेकिन आप को नहीं सुना सकता।"

किसी बुलंद संरचनात्मक सौंदर्ययुक्त सांगीतिक विधान को खयाल में नाज़ुकी से कहने से किसी ने रोका नहीं है और ना ही वह गलत है। इसीलिये खयाल ठुमरी अंग से गाया गया है लेकिन ठुमरी खयाल अंग से नहीं गाई गई है। सिद्धेश्वरीजी की धीमे दीपचंदी में गाई हुई ठुमरी खयाल के करीब जरूर आती है। उसमें टप्पा भी कुछ मात्रा में शामिल है। मध्य और द्रुत तीनताल में गाई जाने वाली लखनऊ की बोल-बाँट की ठुमरी और अभिजात संगीत में गाए जाने वाले छोटे खयाल, इनमें तत्वत: कोई फर्क नहीं है, मात्र इसके कि बोल-बाँट की ठुमरी में हर मात्रा पर अक्षर होते हैं। इसका कारण यह है कि हर मात्रा पर आघात देना नर्तक की आवश्यकता है। लखनऊ की इस बोल-बाँट से प्रभावित होकर आचार्य रातनजनकरजी और पं. दिनकर कैकिणीजी ने बहुत सी बंदिशों की निर्मिती की है, जिनसे हमारा अभिजात संगीत बहुत समृद्ध हुआ है।

ठुमरी की विधा को बोल-बाँट, बोल-बनाव, कहन और अलंकरणों की बहुलता ने बहुत संपन्न बनाया है। ये सब शब्दों के उच्चारण की गरिमा है और केवल शास्त्रीय संगीतक की तालीम पाए हुए, व्याकरणात्मक विस्तार करनेवाले कलाकारों को इन बातों को अपनाने में बहुत कठिनाइयों का सामना करना पडता है और अक्सर वे इनपर प्रभुत्व पा ही नहीं सकते। इन बातों का संय्यमित उपयोग खयालगायन में उसके संरचनात्मक संवेदना को क्षति न पहुँचाते हुए जब जब किया गया है तब तब वह सौंदर्यपूर्ण ही सिद्ध हुआ है। मिसाल के तौर पर फैय्याजखां साहब के शास्त्रीय गायन में ठुमरी की पुकार अलग ही कसक पैदा करती है। और बिस्मिल्लाखां साहब की रागिनी बनारसी कजरी का आभूषण पहन कर रागसौंदर्य को शृंगारित करती है। उस्ताद अब्दुल करीम खां और पं. कुमार गंधर्व के शास्त्रीय गायन में जो मृदुल कारुण्य की पीर समाहित होती है उसका स्त्रोत ठुमरी गायन में ही है। मेरे पिताजी स्वर्गीय वामनराव देशपांडे जी ने मराठी में कहा था की बडे गुलाम खांसाहब की ठुमरी सुनकर रती होती है, तो अब्दुल करीम खांसाहब की ठुमरी सुनकर उपरती।

ठुमरी में भी बहुत विविधता पाई जाती है। उसमें कभी तवायफाना अंदाज होता है, तो कभी वह किशोरवयीन युवती की मासूम, लरकैया संवेदनाओं को भी समा लेती है। कभी वृंदावन की गोपियों की सखी बन जाती है, तो कभी मुरली की सौतन। कभी वृद्धा का विलाप, तो कभी आत्मचिंतन का करूणगंभीर प्रकटीकरण भी करती है, जैसे कि पं. कुमार गंधर्व की ठुमरी।

हमारे संगीत के विगत सौ-डेढ़सौ सालों के इतिहास पर गौर करें तो पता चलता है कि हर घराने के शास्त्रीय गायकों ने ठुमरी गाई है और अपने गायन में ठुमरी के मूल्यों का संय्यमित उपयोग भी किया है। जिन्होंने ठुमरी गाई नहीं वे केवल उस्ताद अमीर खांसाहब ही थे। बडे गुलाम अली खांसाहब तो कहते थे कि जिसे ठुमरी नहीं आती वह खयाल भी ठीक नहीं गा सकता। ठुमरी और खयाल की तुलना करते हुए एक बात साफ दिखाई देती है कि अगर कभी भावस्थिती (mood) अनुकूल न हो तो कलाकार अपना शास्त्रीय गायन रागताल के व्याकरणात्मक शक्यताओं का सहारा लेकर जारी रख सकता है। लेकिन प्रतिकूल भावस्थिती में ठुमरी कतई गाई नहीं जा सकती।

जिससे बडा मार्मिक उद्‌बोधन हो सकता है, ऐसा एक किस्सा बताना चाहूँगा। एक अभिजात संगीत के प्रतिष्ठित उपासक ने घरेलू गपशप में पं. निवृत्तीबुवा सरनाईक जी को कहा, “मैं ठुमरी नहीं गाता”। उनके इस उद्गार में थोडा ग़ुरूर और थोडा घमंड भी था। निवृत्तीबुवा जी जितनी पेचीदा गायकी गाते थे, उतने ही मासूम और सरल स्वभाव के थे। उन्हें लगा वह गायक ठुमरी भी गाने की इच्छा रखता है। उन्होंने निष्कपट भाव से अपनी मराठीनुमा हिंदी में उसे कहा, “तुम्हें ठुमरी गाना क्या? तुम अपनी वही खयाल की गायकी गाते रहो, मगर वो ठुमरी के ताल में गाना।”

सारांश में, जब पूर्वनिश्चित न होने वाले इस अपूर्व संगीत में कलाकार को अपने सौंदर्यशास्त्र की निर्मिती स्वयं ही करनी पडती है, तब स्वाभाविक ही है कि खयाल और ठुमरी की सीमा-रेखाएं भी वह स्वयं ही तय करे (अगर वह ये दोनो विधाएं गाता हो, तो)। इतनी बात निश्चित है कि एकही गायक द्वारा गाए जाने वाले खयाल और ठुमरी की सीमारेखाएं लचीलीं होती हैं, क्योंकि इन दोनो विधाओं का अस्तित्व एक-दूसरे पर निर्भर है। वे परस्परावलंबी हैं - जैसे कि अभिजात्य और लालित्य - जैसे कि पुरुष और प्रकृति।

- सत्यशील देशपांडे
+91-98203-22452
www.satyasheel.com